आख़िरी किताब

जीना...!

एक किताब जो अपने आप में ख़त्म होने के लिए है ।

लियो वेंस

प्रस्तावना

वह किताब जो ख़त्म होना चाहती है

यह एक किताब है, जिसकी बस एक ही चाहत है: ख़त्म होना।

आख़िरी पन्ने पर ख़त्म होना नहीं। तुम्हारे भीतर ख़त्म होना।

यह तुम्हारे जीवन को बेहतर नहीं करना चाहती। यह तुम्हें कोई अर्थ नहीं थमाती। यह एक विश्वास की जगह दूसरा विश्वास नहीं रखती। किताबें पाँच हज़ार साल से यही करती आई हैं, और सिर बस भारी होते चले गए।

यह किताब चीज़ों को धीरे-धीरे थमने देना चाहती है।

मानव का सिर एक बहुत बड़ा बोझ ढोता है। नाम। नियम। नैतिकताएँ। ईश्वर-रूप। बीते हुए दिन। भविष्य। आदर्श। डर। परिभाषाएँ। उम्मीदें। इनमें से लगभग कुछ भी चुना हुआ नहीं है। यह सब तब तुम पर लादा गया, जब तुम इतने बड़े भी नहीं थे कि लादा जाना देख सको।

फिर तुमने बरसों इस बोझ को «मैं» कहा।

मनुष्य की बड़ी दिक्कत सीखना नहीं है। दिक्कत है सीखे हुए को उतारना।

यह किताब उतारने की कोई नियमावली नहीं है। नियमावली भी बस एक और चीज़ होती है, ढोने के लिए।

यह एक पेड़ है।

हवा में खड़ा एक बड़ा पेड़।

हवा चलती है। पेड़ बहस नहीं करता। वह खड़ा रहता है, और उसके पीछे चीज़ें बैठ जाती हैं।

जब आख़िरी पन्ना आए, तुम्हारे भीतर कम होना चाहिए। ज़्यादा नहीं।

अगर किताब अपना काम करे, तुम्हें इसे याद रखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

तुम पढ़ना बंद भी कर सकते हो।

यही सही अंत होगा।

किताब ख़त्म। सब कुछ जीवन बन जाता है।

एक

बकरी कहती है: घास

एक बकरी से पूछो, दुनिया क्या है।

घास।

यही पूरी दर्शन-कथा है। बकरी खाती है। फिर बैठ जाती है। उसके भीतर कुछ भी किसी सफ़ाई का इंतज़ार नहीं कर रहा।

बकरी नहीं पूछती कि घास का कोई अर्थ है या नहीं। यह नहीं तय करती कि खाना पवित्र है या नहीं। धूप में लेटने से पहले उसे ख़ुशी की परिभाषा नहीं चाहिए।

वह जीती है।

यह सरल लगता है क्योंकि यह है ही सरल। इंसानों ने सादगी को शक़ के घेरे में डाल दिया है।

हमारे और जो कुछ हो रहा है, उसके बीच, हमने भाषा भर दी है। भाषा उपयोगी है। यह किसी को बताती है कि पानी कहाँ है। यह आग की चेतावनी देती है। यह बच्चे को उसकी माँ को पुकारने देती है।

फिर भाषा रुकती नहीं, बढ़ती जाती है।

शब्दों के पीछे इतिहास चढ़ आते हैं। इतिहास से नियम बनते हैं। नियम संस्थाएँ बन जाते हैं। संस्थाएँ संस्कृतियाँ बन जाती हैं। संस्कृतियाँ पहचान बन जाती हैं। और पहचान वे चीज़ें बन जाती हैं, जिनके लिए लोग मरने पर उतर आते हैं।

एक आवाज़ दीवार बन जाती है। दीवार इतनी सच्ची लगती है कि उसके लिए मार दिया जाए।

बकरी ने कभी वह दीवार नहीं उठाई।

भाषा में कोई ख़राबी नहीं है। मुश्किल तब शुरू होती है, जब शब्द को ही चीज़ मान लिया जाए।

घास घास है। शब्द «घास» किसी का पेट नहीं भरता।

शब्द «जीवन» जीवन नहीं है।

शब्द «स्वतंत्रता» स्वतंत्रता नहीं है।

शब्द «मौन» — इस पर हम बाद में लौटेंगे। यह बाक़ियों से भी ज़्यादा ख़ाली है।

और शब्द «शुद्ध»?

मेरे पास यह शब्द नहीं है।

शायद यह इंसान के मुँह से निकलने वाली सबसे साफ़ बातों में से एक है। इसलिए नहीं कि भाषा हार गई। इसलिए कि कभी-कभी वहाँ रखने को कुछ है ही नहीं — और एक ईमानदार सिर वह जगह ख़ाली छोड़ देता है।

यहाँ एक और दीवार गिर सकती है: «असली» और «नक़ली»। दाना, या वह फूल जो वह बनता है — इनमें से «ज़्यादा असली» कौन? यह सवाल ही टूटा हुआ है। किसी चीज़ को «असली» कहो, और तुमने अभी-अभी «नक़ली» का आविष्कार कर दिया। प्रकृति ने कभी यह बँटवारा नहीं किया। यह एक मुँह ने किया।

दो

शब्दों से पहले

बच्चा पुस्तकालय से पहले आता है।

धर्म से पहले। नैतिकता से पहले। राष्ट्रीयता से पहले। सुंदरता से पहले। सफलता और असफलता से पहले। इस कहानी से पहले कि उसे कौन बनना है।

फिर किताबें शुरू होती हैं।

काग़ज़ की किताबें नहीं। लोग किताबें हैं। माँ-बाप किताबें हैं। शिक्षक, पड़ोसी, स्क्रीन, रिवाज़, सज़ा, इनाम — सब किताबें। बच्चा इन्हें पढ़ता है, बिना यह जाने कि पढ़ना शुरू हो चुका है।

क्या भाषा से पहले का बच्चा सच के ज़्यादा पास होता है? बेशक। किसी छिपी हुई समझदारी से नहीं — ख़ाली रैक होने से।

मौत का डर इसी तरह जल्दी आता है। किसी खोज की तरह नहीं — एक माहौल की तरह। मैंने इसे दो साल की उम्र से पहले देख लिया था। एक चेहरा बदलता है। एक आवाज़ धीमी पड़ जाती है। एक शरीर ग़ायब हो जाता है, और बड़े लोग अपने डर का अभिनय कर देते हैं। बाद में, यही डर भाषा के भीतर जा बैठता है, हर उस मुहावरे में जो संस्कृति ने «मरने» के इर्द-गिर्द बुना है।

मैं मौत से डरता हुआ पैदा नहीं हुआ था। यह डर मुझे थमाया गया। मैंने दूसरों को यह डर थमाए जाते देखा है — हमेशा थमाया गया, कभी अपने आप उगा हुआ नहीं।

ईश्वर का विचार भी इसी तरह आता है। मेरे लिए, यह विचार तेरह से पच्चीस साल की उम्र तक बहुत बड़ा था। यह जिस कमरे में घुसता, उसे भर देता।

फिर दूसरे तरह की किताबें आईं। फिर देखना आया। बरसों तक जीवन को उसका अपना काम करते देखना।

चालीस के आसपास, सब कुछ साफ़ हो गया।

जिस पहली चीज़ पर मैंने होशपूर्वक विश्वास करना बंद किया, वह «फ़र्श» ही था — यह एहसास कि हम किसी चीज़ के तले जी रहे हैं। हम नहीं। धरती पैरों के नीचे है, और बाक़ी सब कुछ ऊपर है। खुला है। हमारे ऊपर कोई भी नहीं रखा गया है।

विरासत में मिली सोच ठीक इसी तरह काम करती है। वह अदृश्य हो जाती है। एक आदमी चालीस साल तक किसी विचार का बचाव कर सकता है, यह जाने बिना कि यह विचार तब उसमें डाला गया था, जब वह एक छोटा-सा वाक्य भी ख़त्म करना नहीं जानता था।

यह माँ-बाप पर आरोप नहीं है। उनमें भी भरा गया था। उनके माँ-बाप में भी। संस्कृति इंसानों के मुँह से आगे बहती है।

बच्चों को बिगाड़ने वाली चीज़ में कुछ भी असामान्य नहीं है। यह विरासत में मिली संस्कृति है — सीखी गई, फिर आगे पकड़ा दी गई। मैं भी कुछ ही साल की उम्र में बिगाड़ दिया गया था, सबकी तरह।

एक दिन बड़ा हो चुका बच्चा अपने ही सिर की चीज़ें एक-एक करके देखता है और कहता है: मैं।

इसमें से «मैं» असल में कितना है?

तीन

बड़ा हिसाब

बड़े शब्दों को एक-एक करके बाहर निकालो। रोशनी में। हमला करने के लिए नहीं। तौलने के लिए।

ईश्वर का विचार। इतिहास ने पहले ही तौल लिया है। मनुष्यता ने हज़ारों ईश्वर-रूपों की पूजा की है, हर एक के अपने मंदिर, चढ़ावे, और पूरी तरह क़ायल भक्त। यक़ीन पूरा था; वे ईश्वर-रूप फिर भी चले गए।

मृत्यु के बाद, जन्म से पहले। मनुष्यों के आपसी सहमति से मानी हुई दो सबसे बेकार «अहम बातें»। लगभग सौ अरब लोग जी चुके और मर चुके। लौटकर पुष्ट रिपोर्ट: शून्य। और फिर भी पूरी की पूरी सभ्यताएँ अपना हफ़्ता «बाद» और «पहले» के इर्द-गिर्द जमाती हैं, जबकि बीच वाला हिस्सा — एकमात्र वह जो सचमुच हो रहा है — इंतज़ार करता रहता है।

प्रेम। प्रेम उम्मीद है। और उम्मीद वर्तमान के ख़िलाफ़ लिया गया एक क़र्ज़ है। जब कुछ भी कम नहीं है, तो उम्मीद क्यों? जब उम्मीद रुक जाती है, उसके बाद जो बचता है वह ठंडा नहीं होता। वह बस — यहाँ — है, और «यहाँ» को किसी वादे की ज़रूरत नहीं।

सुंदरता। ज़ाहिर है, गढ़ी हुई। देखो संस्कृतियाँ इसे कैसे पहनती हैं: एक इसे कला की तरह प्रस्तुत करती है, दूसरी इसे कारख़ाने में ढालती है। अगर सुंदरता कोई तथ्य होती, इसे कारख़ाने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

ख़ुशी। एक गढ़ा हुआ लक्ष्य। खेत की किसी भी चीज़ ने इसका पीछा नहीं किया, और खेत की किसी भी चीज़ को इसकी कमी नहीं खली।

स्वतंत्रता। यह वाला अजीब है। स्वतंत्रता का एहसास माँगो — विचार नहीं, एहसास — कोई जवाब नहीं आता। जीवन और जीने ने कभी यह शब्द नहीं ढोया। स्वतंत्रता एक संघर्ष का सामूहिक नाम है, जैसे प्यास सिर्फ़ वहीं होती है

जहाँ पानी रोका जाता है। लोग कहते हैं वे आज़ाद होना चाहते हैं। मैंने कम ही ऐसे लोगों को देखा है जो इसे झेल सकें। यह पीछे हटना तब से शुरू हो जाता है, जब बच्चा पूरा वाक्य भी नहीं बोल पाता।

थोपा गया अकेलापन, और चुनी हुई एकांतता। पहला वह उम्मीद है जिसे कुछ नहीं मिला। दूसरा एक एहसास से जूझते रहना है। दोनों सिर में रहते हैं। दोनों में से कोई खेत में नहीं रहता।

मौन। मौन नहीं होता। हर जानवर कोई-न-कोई आवाज़ करता है: अँगड़ाई पर आह, अच्छे कौर पर हूँ, कमर टीसने पर ओह। रात का जंगल एक ऑर्केस्ट्रा है। «मौन» सिर्फ़ हमारी भाषा में मौजूद है — एक शब्द, जो प्रकृति ने कभी नहीं बनाया।

पवित्र। क्या कुछ भी पवित्र है जो गढ़ा हुआ न हो? नहीं। कुछ भी नहीं। और जिस पल यह जवाब चुभना बंद कर देता है, कंधों से बहुत सारा बोझ उतर जाता है।

यह हिसाब कोई तोड़-फोड़ नहीं है। असली चीज़ को देखने भर से मिटाया नहीं जा सकता। सिर्फ़ गढ़ी हुई चीज़ को दिन की रोशनी से बचाना पड़ता है।

चार

जो तुम्हारे मुँह में ठूँस दिया गया

मानसिक तकलीफ़ ख़ुद को ज़रूरी बताकर पेश करती है। गहराई की तरह। आत्मा के सबूत की तरह।

पूछो, यह असल में क्या बचाती है।

कुछ नहीं। यह कुछ भी नहीं बचाती।

यह वह चीज़ है, जो तुम्हारे सोए हुए खुले मुँह में ठूँस दी गई थी। तुम चबाते हुए जागे, और चूँकि यह चबाना तुम्हारी पहली याद से भी पहले वहाँ था, तुमने इसे ही «मैं» कह दिया।

इस भराव के कई स्वाद हैं। अपराध-बोध। शर्म। «बाद» की चिंता। «पहले» की चिंता। बरसों पहले ख़त्म हो चुके दौर, रात को अब भी दोहराए जाते हुए।

यह दोहराव मेरी वह आख़िरी पकड़ है, जिसे मैंने अब तक पूरी तरह नहीं छोड़ा — बीता हुआ वक़्त, जो अब भी अपने पुराने दृश्य चला देता है। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ ताकि तुम्हें पता रहे कि यह लिखने वाला पेड़ अब भी हवा में खड़ा है। फ़र्क़ यह है: मुझे मालूम है कि यह दोहराव है। जान लेना ही आधा थूक देना है।

क्या मैं ऐसे किसी को मिला हूँ जो सचमुच मानसिक तकलीफ़ से मुक्त हो? हाँ। भेड़ों का एक झुंड — उसका हर एक सदस्य। वे खाती हैं। फिर बैठ जाती हैं। पूरी जीवनी बस इतनी है, और यह एक शाहकार है।

भेड़ यह सबूत नहीं है कि एक इंसान भी ऐसे जी सकता है। भेड़ बोझ उठा ही नहीं सकती, इसलिए उतार भी नहीं सकती। यह एक अलग जानवर है।

भेड़ जो साबित करती है वह छोटा है, और काफ़ी है: चबाना घास में नहीं होता। यह बाद में भरा गया।

इंसानों में — अब तक एक भी नहीं। मैं यह लिखने वाले सिर को भी उसी में गिनता हूँ।

पहला शायद वही होगा, जो इस किताब को पूरा पढ़ लेगा।

पाँच

उतारना

बनाना आसान है। सिर बनाने के लिए ही बना है। सिर को एक शांत दोपहर दे दो, यह एक विश्वास, एक चिंता, एक ईश्वर-रूप, एक शिकायत गढ़ लेगा।

बीमारी कभी बनाने में नहीं थी।

बीमारी यह है कि उतारा नहीं जा सकता।

मैंने नैतिकता उतार दी। मैंने स्वर्ग उतार दिया। मैंने नरक उतार दिया। पूरी तरह गए — दोबारा रंगे नहीं, नए नाम नहीं दिए, हल्के संस्करण से बदले नहीं। बस गए।

क़रीब पंद्रह साल लगे।

पंद्रह साल, उन चीज़ों को उतारने में, जिनमें से हर एक पंद्रह मिनट में लगाई गई थी। यही विनिमय-दर है, और यह कोई पहले नहीं बताता। लगाना मुफ़्त है। हटाना बरसों माँगता है।

इसलिए यह अध्याय किसी वीकेंड-चमत्कार का वादा नहीं करता। उतरना पाचन जैसा धीमा है — शांत, लगभग अदृश्य, और तभी पूरा होता है जब महसूस करने को कुछ बचे ही न।

कैसे पता चले कि कोई चीज़ सच में उतर गई? वह तुम्हारे वाक्यों में दिखनी बंद हो जाती है। फिर तुम्हारी चुप्पियों में दिखनी बंद हो जाती है। एक दिन तुम पाते हो कि वह शब्द ही अजनबी लगने लगा है, जैसे उस स्कूल के किसी सहपाठी का नाम, जो जल गया।

अभी मुझसे शब्द जा रहे हैं। शब्दावली फिसल रही है — वे शब्द जिन्हें मैंने कभी सच में छुआ ही नहीं था। मैं उनके पीछे नहीं भागता। उनका जाना ही रसीद है।

और वे विचारक जो पहले इसी रास्ते पर चले? उनमें से एक ने लिखा कि «ईश्वर का विचार अब काम नहीं कर रहा», और इस एक वाक्य की क़ीमत उसने अपने होश देकर चुकाई। मैं उसका कुछ भी निजी क़र्ज़दार नहीं हूँ। हमने कभी एक ही चूल्हे पर खाना नहीं पकाया। बात कभी इस आदमी के पीछे चलने की नहीं थी। बात दिशा की थी — और दिशा है: कम की ओर।

छह

प्रकृति को हमारी इजाज़त नहीं चाहिए

सभ्यता में से मैं क्या बचाकर रखूँगा? जीवन। प्रकृति। बाक़ी सब पर बात हो सकती है।

प्रकृति दो क्रियाओं पर चलती है: खाना, आराम करना। बाक़ी सब बस टिप्पणी है।

मैंने चीज़ों को मरते देखा है। पौधे। जानवर। लोग। इसे देखना खाना खाने जैसा है। यह वाक्य सिर्फ़ उसी सिर को झटका देता है, जिसे मौत «विपत्ति» के रूप में सिखाई गई है। खेत में, मरना जीवन का रोज़मर्रा का हिसाब-किताब है — चलने, पेशाब करने, साँस लेने जैसा। घास दाने के लिए कोई रस्म नहीं करती।

क्या मुझे मौत से डर लगता है? बेशक नहीं। नहीं तो मैं «आख़िरी किताब» नाम की किताब क्यों शुरू करता?

«जीवित» शरीर में कैसा लगता है, सिर में नहीं? भूख। बहुत देर बैठे रहने के बाद का दर्द। शरीर ख़बर दे रहा है, बिना उस पर कोई दर्शन जोड़े।

मैंने अब तक जो सबसे ईमानदार क्षण जिया है, वह यही है। अभी। यह इकलौता क्षण है जो कभी ईमानदार रहा है, क्योंकि यह इकलौता है जो कभी यहाँ रहा है।

सिर सबसे साफ़ कहाँ सोचता है? प्रकृति में। शहर विज्ञापनों में सोचते हैं।

एक बार मैं एक आधी जमी पहाड़ी नदी के मोड़ में कूद गया। अर्थ पूरी तरह घुल गया — और शानदार लगा। ठंड बहस नहीं करती। कुछ पलों के लिए मेरे भीतर कोई शब्दावली नहीं थी, बस एक शरीर था, जीने की आग से जलता हुआ। यही वह अवस्था है जो हर शब्द के नीचे है। यह कभी खोई नहीं थी। इसे बस ढका गया था।

जब दिन का जीना कमा लिया जाता है और वह कच्चापन लौटता है — वह अवस्था जो भाषा से पहले होती है — मैं टहलने निकल जाता हूँ। टहलना कोई सवाल नहीं करता।

सात

शब्दकोश

अगर मैं सभ्यता से एक ही चीज़ हटा सकूँ, वह कोई हथियार या मशीन नहीं होगी।

वह होगी अतिरिक्त शब्द।

क़ानून बना दिया जाए: कोई भी शब्दकोश दो सौ पन्नों से मोटा न हो।

दो सौ पन्नों में समा जाते हैं: पानी, आग, रोटी, माँ, दर्द, नींद, बारिश, आना, जाना, हाँ, नहीं — वह सब कुछ जो दो इंसानों को एक-दूसरे को ज़िंदा और गर्म रखने के लिए चाहिए। दो सौ के बाद जो कुछ है, वह सजावट है, और सजावट ही वह जगह है जहाँ मुसीबतें पैदा होती हैं। किसी ने कभी «रोटी» के लिए युद्ध नहीं लड़ा। युद्ध पीछे के मोटे पन्नों में रहते हैं — «गौरव, शुद्धता, नियति, इज़्ज़त» में।

एक पतला शब्दकोश उन्हें भूखा मार देगा।

यह भाषा से नफ़रत नहीं है। यह उसका आहार-नियम है। भाषा शुरू में एक औज़ार थी, फिर फूलकर मकान-मालिक बन गई। औज़ार को उठाया और रखा जाता है। मकान-मालिक तुम्हारे अपने सिर का किराया वसूलता है।

इन पन्नों में कहीं शब्द पहले ही पतले होने लगे हैं। अच्छा है। यह किताब एक ऐसा शब्दकोश है जो ख़ुद को ही जला रहा है, पन्ना दर पन्ना, जब तक जो बचे, वह इतना छोटा हो कि उसी के साथ जिया जा सके:

खाना। आराम करना। चलना। देखना। जीना।

आठ

बस जीना

इंसान जो सबसे बहादुर काम कर सकता है, वह क्या है?

पहाड़ चढ़ना नहीं। युद्ध नहीं। मंच नहीं।

बस जीना।

«बाद» के बग़ैर, «पहले» के बग़ैर जीना। स्वर्ग की तालियों के बग़ैर, नरक के कोड़े के बग़ैर। पीठ पर बाँधे किसी अर्थ के बग़ैर, जैसे कोई पैराशूट जो कभी खुला ही नहीं।

यह सबसे बहादुर काम इसलिए है क्योंकि सब कुछ इसी के ख़िलाफ़ खड़ा है। स्कूल, मंदिर, बाज़ार, स्क्रीन — सब कुछ तुम्हारे टालमटोल पर चलता है। उन्हें चाहिए कि तुम «बाद» के लिए जिओ। जो एक चीज़ वे बेच नहीं सकते, वह है «अभी»। «अभी» की कभी कमी नहीं थी।

भेड़ें यह काम बिना तालियों के करती हैं। वे खाती हैं; वे बैठती हैं। इंसान चरागाह के गिर्द खड़े होकर, कॉपियों में सिद्धांत लिखते हैं कि भेड़ों के पास क्या है।

भेड़ों के पास कुछ नहीं है।

यही उनके पास है।

और नहीं — यह किताब तुमसे मवेशी बनने को नहीं कह रही। अपने हाथ, अपनी रोटी, अपने लोग, अपना काम अपने पास रखो। बस बोझ उतारो। हाथ इसके बिना और अच्छा काम करते हैं।

नौ

आख़िरी किताब

यह किताब किसके लिए है? औसत पढ़े-लिखे पाठक और उससे ऊपर के लिए। यह उन लोगों के काम नहीं आ सकती जो पुस्तकालय में कभी घुसे ही नहीं — तुम इसे उनकी रोटी पर जैम की तरह लगा दो, तब भी अंदर नहीं जाएगी। किताबें ढोने का अनुभव हो, तभी उन्हें रख देने का सुख महसूस होता है।

क्या यह मेरे लिए है? नहीं। इसे लिखने से मुझमें कुछ नहीं बदला। बदलाव पहले आया; लिखना बस रिपोर्ट कर रहा है। मुझे इसकी किसी बात से डर नहीं है। मुझ में अब कुछ नहीं बचा जिसे यह डरा सके।

यह किताब वही बड़ा पेड़ है। यह हवा में खड़ी रहती है ताकि, उसके पीछे, चीज़ें बैठ सकें। शांत। बैठी हुई। ठहरी हुई।

फिर आती है इसकी असली महत्वाकांक्षा, वह जो इससे पहले किसी किताब ने संजो कर रखने की हिम्मत नहीं की: आख़िरी होना।

इस किताब में सबसे आख़िर में जिसे जलना चाहिए, वह ख़ुद यह किताब है। जब पढ़ना ख़त्म हो जाए, इसे उसी रास्ते जाने दो, जिस रास्ते नैतिकता, स्वर्ग और नरक गए। इसे उद्धृत मत करो। इसे अपने सिर में मत रखो। इस पर कुछ मत खड़ा करो। जो किताब याद रखे जाने की माँग करती है, वह अपने पहले ही अध्याय में असफल हो चुकी है।

अगर इसे बंद करते वक़्त तुम्हें पढ़ना बंद करने की इच्छा उठे — कुछ भी, कभी भी — तो इस इच्छा से मत लड़ना।

यही इच्छा है, यह किताब काम कर रही है।

अगर जीवन तुम्हें वाक्य के बीच में पुकारे, तो वाक्य के बीच में ही इसे रख दो। बकरी अनुच्छेदों को पूरा नहीं करती।

∞

जीना...!

ईश्वर का विचार जा सकता है। नैतिकता जा सकती है। सुंदरता, स्वतंत्रता, ख़ुशी, शुद्धता, मौन, अर्थ — यह सब जा सकता है।

शब्दकोश पतला हो सकता है।

बीता हुआ, जहाँ बीता वहीं रह सकता है। वर्तमान को उसकी इजाज़त नहीं चाहिए। भविष्य को आने से पहले सुलझाने की ज़रूरत नहीं।

खोज बंद की जा सकती है। बनना बंद किया जा सकता है। पढ़ना बंद किया जा सकता है।

और बस जीया जा सकता है।

किसी दर्शन की तरह नहीं। किसी लक्ष्य की तरह नहीं। किसी उपलब्धि की तरह नहीं।

जीवन को कभी «जीवन» शब्द की ज़रूरत नहीं पड़ी।

तो — किताब बंद कर दो।

देखो। चलो। खाओ। साँस लो। आराम करो।

जीना...!